ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, RNI:UPBIL04292, REG. No.: 561/2013-2014 Vol.-2, No.-2, PP-282-286,YEAR-2015

कबीर का रहस्यवादः साहित्य कीअद्वितीय निधि

❑ डॉ. ऊषा पाठक

प्रस्तावना – *आत्मा–परमात्मा के संबंध में चर्चा दर्शनशास्त्र का विषय है। किंतु दर्शन में विचारों की,चिंतन की प्रधानता रहती है। रहस्यवाद भावना की वस्तु है–काव्य का विषय नहीं। इसी सत्य की ओर संकेत करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था कि ''साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही साहित्य–क्षेत्र में रहस्यवाद है।''*

हिन्दी के रहस्यवादी कवियों में कबीर का महत्त्वपूर्ण स्थान है । वे आध्यात्मिक प्रेम में डूबे हुए ऐसे सन्त कवि है जिन्होंने चेतना के उच्चतर सोपानों पर पहुंचकर उस ब्रह्मा से भावात्मक सम्बन्ध जोड़ा था। रहस्यवादी कवि शरीर की सुध–बुध भूलकर अंतर्जगत में रम जाता है, आत्मारूप में। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग युगों से स्त्रीलिंग में हो रहा है। अतः रहस्यवादी कवि की'आत्मा' स्त्रीलिंग में बोलती है। परमात्मा पुलिंग है। धीरे–धीरे परमात्मा और आत्मा नर–नारी के रूप बन जाते हैं और यही दशा विकसित होती हुई आत्मा और परमात्मा में दाम्पत्य भाव की स्थापना कर देती है। यही कारण है कि रहस्यवादी भावनाएं अधिकतर दाम्पत्य प्रेम के रूप में अभिव्यक्त होती हैं।

कबीर कहते है– हे अवधूत योगी! तुम आकाश रूपी सहस्रार चक्र में अपना निवास बना लो।वहाँ निरन्तर अमृत की वर्षा होती रहती हैं,अखण्ड आनन्द व्याप्त रहता है और कुण्डलिनी सहस्रार चक्र से झरने वाले अमृत रस का निरन्तर पान करती रहती है।

रहस्य का अर्थ है –''ऐसा तत्त्व जिसे जानने का प्रयास करके भी अभी तक निश्चित रूप से कोई जान नहीं सका। ऐसा तत्त्व है परमात्मा। काव्य में उस परमात्म–तत्त्व को जानने की, और जानकर उसे पाने की और मिलने पर उसी में मिलकर खो जाने की प्रवृत्ति का नाम है–रहस्यवाद है ।''

रहस्यवाद भारतीय काव्य के लिए कोई नई चीज नहीं है। वेदों और उपनिषदों में(ऋग्वेद का नारदीय सूक्त,केनोपनिषद्,श्वेताश्वेतरोपनिषद आदि),गीता के 11वें अध्याय में, शंकराचार्य के अद्वैतवाद में,सहजानंद के उपासक कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाओं में रहस्यवादी भावनाएं नाना रूपों में व्यक्त हुई हैंय किंतु वेदों से सिद्धों तक यह अभिव्यक्ति बौद्धिक चिंतन अर्थात मस्तिष्क से ही संबंधित रही हैं।अतः इसे रहस्यवाद नहीं,दर्शन कहना उचित है।

हिंदी में रहस्यवाद का स्वर सर्वप्रथम कबीर की वाणी में सुनाई देता है। कबीर एक पहुंचे हुए संत थे। उनकी अनुभुति में आत्मा–परमात्मा की एकता का सुंदर चित्रण हुआ। वे कहते हैं–

''जल में कुंभ,कुंभ में जल है,बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तत कथ्यो गियानीघ''

कबीर ने अन्योक्ति परक पदों के द्वारा भी रहस्यवादी प्रवृत्ति का परिचय दिया है।उनके कई पदों में जीवात्मा के विरह का, उसकी दयनीय दशा का चित्रण है। यथा–,

तेरे ही नाल सरोवर पानी ।
जल में उत्तपत्ति जल में वास,
जल में नलनी तोर निवास ।।''

भक्तिकाल के अनंतर रहस्यवादी भावना इस

विभागाध्यक्षा– हिन्दी विभाग, नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर (उ0प्र0) भारत

युग के सभी प्रमुख कवियों की कविता में रहस्यवाद की भावना व्यक्त हुई। जयशंकर प्रसाद इसे भारतीय परंपरा का विकसित रूप मानते हैं। वे कहते है–"वर्तमान हिंदी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौंदर्यमय व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है....वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है,इसमें संदेह नहीं।"

आज साहित्य में विश्व– सुंदरी प्रकृति में चेतना का आरोप संस्कृत वाङ्गमय में प्रचुरता से प्राप्त होता है। कबीर ने सांकेतिक दाम्पत्य–भाव सूत्र में बांधकर एक निराले स्नेह संबंध की सृष्टि कर डाली, जो "मनुष्य के ह्रदय को आलंबन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को ह्रदयमय और ह्रदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

कबीर के रहस्यवाद में राष्ट्रवाद के सभी तत्व विद्यमान है–जिज्ञासा की वृत्ति, परमात्मा से विरह की अनुभूति, मिलन की उत्कण्ठा, परमात्मा से मिलन का आनन्द। कबीर ने उस निर्गुण निराकार परमात्मा को सम्पूर्ण संसार में व्याप्त पाया है,वे उसे जानना चाहते है उसकी सत्ता की अनुभूति उन्हें समग्र जग में होती है। वे कहते हैं–

"लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल,
लाली देखन में गई मैं भी हो गई लाल ।"

रहस्यवाद का सबसे बड़ा आकर्षण यही है कि वह एक धुंए की तरह है जिसका न कोई रंग होता है, न कोई अस्तित्व.. लेकिन वो दिखता है और जितना दिखता है उससे अधिक छिपाता है.. छिपाना आकर्षण को जन्म देता है सदा से ही.. बस यही आकर्षण प्रेम बनकर सूफियों और संतों के मुख से गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता रहा है.. सुनने वाला समझता है कि महबूब और माशूक की बातें हैं, लेकिन पहुँचती है आत्मा और परमात्मा तक.. और इस तरह से हम रहस्यवाद को निम्न पंक्तियों से आसानी से समझ सकते है ।

"रहस्यवादी कवि शरीर की सुध–बुध भूलकर अंतर्जगत में रम जाता है, आत्मारूप में। 'आत्मा' शब्द का प्रयोग युगों से स्त्रीलिंग में हो रहा है। अतः रहस्यवादी कवि की'आत्मा' स्त्रिलिंग में बोलती है। परमात्मा पुलिंग है। धीरे–धीरे परमात्मा नर–नारी के रूप बन जाते हैं और यही दशा विकसित होती हुई आत्मा और परमात्मा में दाम्पत्य भाव की स्थापना कर देती है।"

कबीर के काव्य में भावात्मक और साधनात्मक दोनों ही रूपों में रहस्यवाद के दर्शन मिलते है। वस्तुतः उनकी रहस्यात्मकता अत्यन्त व्यापक है। उनका प्रियतम घट–घट वासी है। लोग उसे इध् ार उधर खोजते हुए भटक रहे है,जबकि वह कस्तूरी की समान मृग की अपनी नाभि में ही उपलब्ध है–

"कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढे बन माहिं।
ऐसहिं घट–घट राम है, दुनिया जानै नाहिं ।।"

'रहसि भवम् रहस्यम्'! रहस्य का अर्थ है गोपनीय, गुप्त, गुह्य। व्यक्तिगत रुप से सम्पन्न होने वाली अनुभूति ही रहस्य है। एकान्त साध्य कर्म ही रहस्य है। ब्रह्म भी इसलिए रहस्य है उनकी भक्ति रहस्य भावना है परोक्ष के प्रति जिज्ञासा है।

इसलिए तो कबीरदास जी कहते हैं–

" संतों धोखा का सु कहिए
जस कहत तस होत नहीं है
जस है तैसा होहिं।"

कबीर के रहस्यवाद में सतत चेतनशीलता है। मन को निरन्तर जाग्रत रहना है, जिससे कोई ध् ाोखा न खा जाए और सन्मार्ग विस्मृत न हो जाए। चेतना विहीन होने पर परमात्मा से सम्बन्ध छूटने का भय है–

" मन रे जागत रहिए भाइ । गाफिल होइ बसत मत खोवे चोर घुसै घर जाइ ।।"

ब्रह्म न तो किसी शब्द का मोहताज है न किसी परिभाषा का। अभिव्यक्ति जो ससीम है वह असीम को नहीं बांध सकती। कबीर दास इस ब्रह्म को ढूंढने के बाद, जब कहीं कुछ प्राप्त नहीं कर पाते तो अंततः झुझलाकर कहते हैं–तहां कछु आहि की शुण्यम वहां कुछ है भी कि शून्य ही शून्य है। कबीर दास जी बताते है कि ब्रह्म शून्य है और इसलिए रहस्य है। इस रहस्य को समझने के लिए हमें यह मन को

एकाग्रचित्त एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करना पड़ता है। कबीर दास के रहस्यवाद को बने बनाये ढाँचे में भी रखकर देखा जा सकता है, लेकिन जिस तरह कबीर दास जी स्वभाव से ही ढाँचा तोड़ने वाले कवि हैं उनकी कविता में, उसी तरह के भाव है जो अध्यात्म से जुड़े हुए है। इसी कारण कोई उसे सिद्धों–नाथों के रहस्यवादी ढाँचे में रखकर देखता है तो कोई सूफी सम्प्रदाय के ढ़ाँचे में। ईसाई रहस्य मर्मियों के ढाँचे में रखने से भी कबीर दास जी का रहस्यवाद उसमें सोलह आने ,शत प्रतिशत सटीक फिट हो जाता है। सभी प्रकार के रहस्यवाद का प्रकट होना ही यह सिद्ध करता है कि उसका कोई एक ढाँचा नहीं है।

कबीर हिन्दी के महान कवियों में से एक है। उत्तर भारत की हिन्दी भाषी जनता में तुलसी के उपरान्त यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ है, तो वह कबीरदास जी ही है। कबीर की साखियाँ, उनके पद लोगों को कंठस्थ है, जिन्हें वे अनेक अवसरों पर उदाहरण के रूप में रहस्यवाद के माध्यम से ही व्यक्त करते है।

कबीर ने अपने रहस्यवाद के लिए सूफियों की तरह प्रेम गाथा का सहारा नहीं लिया है, अद्वैतवादियों की तरह कोई व्याख्या भी नही दी है। उन्होनें ईसाई रहस्यवादियों की तरह संस्मरणों को लेखबद्ध भी नहीं किया है, किन्तु उनके रहस्यवाद में भावना के विकास का एक उत्तरोत्तर क्रम खोजा जा सकाता है।

रहस्यवाद की चार विशेषताएँ हैं– प्रेम, आध्यात्मिकता, सतत् जागृति तथा भावना के साथ ह्रदय की उन्मुखता। कुमारी अंडरहिल ने रहस्यवाद की पाँच अवस्थाएँ मानी है–

1. परिवर्तन, 2. अध्यात्मिक जागरण,
3. उद्भाषण या दिव्यीकरण, 4. आत्म समर्पण और
5. मिलन या संयोग।

सामाजिक असंतोष एवं बराबरी की चाह परिर्वतन से ही संभव है। यह परिर्वतन ईश्वर के मिलन से ही संभव है। यही ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा पैदा करती है। इस हेतु आध्यात्मिक जागरण आवश्यक है। साधक में आध्यात्मिक जागरण गुरू .पा से आता है। गुरू ही लौकिक संबंधो से काट कर उसे आध्यात्मिक संबंध में बांधता है। रहस्यवादियों का पथ अनालोकित होता है। इसलिए उस पथ पर चलने के लिए ऐसे पंथी का मार्गदर्शन आवश्यक है, जो उस पर पहले चल चुका हो। कबीर दास कहते हैं कि मैं तो बहुत निश्चित होकर लोकवेद का मार्ग पकड़े चला जा रहा था कि आगे गुरू मिल गया।

"कबीर पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथ।
आगे थै ए सतगुरू मिल्या, दीपक दिया हाथि।।"

कबीर गुरू के बिना जर्जर नाव पर भवसागर पार करना सोंच रहे थे वह डूबती हीं वे कहते है–

" डूबा था पै ऊबरा, गुरू की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, ऊतरि पड़े फरंकि ।।"

कबीर दास जी मानते हैं कि यदि गुरू नहीं मिलता तो बड़ी हानि होती हमें न ज्ञान की प्राप्ति होती और न ही भक्ति की।

'भली भई जो गुरू मिल्या नहि तर हो ति हानि'

कबीर दास जी ईश्वर, गुरू और जीवात्मा में भूमिका भेद के बावजूद अभिन्नता मानते हैं और इस कारण उनकी वाणी में कुछ अटपटापन आ जाता है। लेकिन ध्यान से देखें तो उसमे एक स्पष्ट अद्वैत .ष्टि दिखेगी। ब्रह्म प्राप्ति के बाद ब्रह्म में, गुरू में, जीवात्मा में फर्क कहाँ रह जाता। कबीर का जो गुरू है वही ब्रह्म के दीदार से सद्गुरु हो जाता है– 'गुरू गोबिंद तौ एक है, दूजा यह आकार' । यह सद्गुरू ही कबीर का ब्रह्म है तथा गुरू के कारण साधक की जीवात्मा अपने सही स्वरूप को पहचानती है। ब्रह्म के परिप्रक्ष्य में ही अपने को देखना आत्म–ज्ञान है। कबीर की जीवात्मा खुले नेत्र से उस ब्रह्म को देखती है और उसे पहचानते हुए अपनी पहचान निर्धारित करती है। एक बार जैसे हीं उस ब्रह्म के दर्शन होते हैं तो कबीर की आँखें चौंधिया सी जाती है वह एक विलक्षण अनुभव है जिसे बांटा नहीं जा सकता है–

"पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्मान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान।।"

यह दर्शन गुरू की सहायता से ही संभव है। इस दर्शन के बाद विलग होते ही जीवात्मा पुनर्दर्शन के लिए तड़प उठती है। कबीर उसे चारो ओर ढूंढ़ते हैं। उसकी छवि हर क्षण आँखों में बसी रहती है।

'दुइ दुइ लोचन पेखा, हरि बिनु अउरू न देखा।'

यह वियोगिनी जीवात्मा प्रेम के कारण ही उस दिव्य अनुभूति से तदाकार के लिए विकल हो जाती है। निम्नलिखित उदाहरण से उस अनुभूति को समझा जा सकता है–

'आठो पहर मतवाला लागि रे
आठो पहर साँझ की धौक पिउ पिउ' ।

अन्य एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

''चकवी बिछुरी रैणि की, आई मिली परभाति।
जे जन बिछुरे राम से, ते दिन मिलें न राति।''

कबीरदास के रहस्यवाद में प्रेम को बहुत महत्व दिया गया है। उनका प्रेम भी विरह में ही परिपक्व होता है। कबीर का प्रेम ऊपर से देखने में जितना सरल दिखता है उतना है नहीं। उनका प्रेम तो आत्मविसर्जन है। अपने को देकर ही उस परम प्रिय ब्रह्म को पाया जा सकता है।

''कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भूइ धरे, सो पैठे घर माहिं।।''

इस प्रेम के लिए साधक को पूर्णतः अहम् से मुक्त होकर ब्रह्म के लिए समर्पित हो जाना पड़ता है। यहाँ आत्म विसर्जन से पछतावा नहीं होता सुख मिलता है।

'कहे कबीर प्रेम का मारग,
सिर देना तो रोना क्या रे'।

अन्तिम अवस्था है चिर विरह के बाद चिर संयोग यहाँ जीवात्मा की सारी बेचौनी समाप्त हो जाती है। अहम' और इदम' का फर्क नहीं रह जाता 'मैं' और 'पर' का द्वैत मिट जाता है।

''मैं सबनि औरनि मैं हूँ सब
मेरी विलगि–विलगि विलगाई हो।
कोई कहौ कबीर, कोई कहौ रामराई हो।''

यही अद्वैत अवस्था है जहाँ व्यक्ति चेतना विश्व चेतना में समाहित हो जाती है। यहाँ इस अवस्था में ही कबीर को कोई कबीर कहता है कोई रामराई कहता है। जब कोई कबीर को पुकारता है तो राम जवाब देते हैं और जब राम को पुकारता है तो कबीर जवाब देते हैं। इन दोनों की भूमिकाएँ पहले अलग–अलग थी अब एक हैं। कबीर की जीवात्मा कहती है कि अब इस अवस्था में जो गति ईश्वर की होगी वही मेरी होगी । इसीलिए तो वे कहते है––

'हरि मरिहैं तो हमहु मरिहैं, हरि न मरिहैं तो हम काहे को मरि हैं'।

जीवात्मा भी परमात्मा में मिलकर परमात्मा के गुणों से विभूषित हो जाती हैं दो का एक हो जाना ही अद्वैत हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि कबीर एक उच्चकोटि के भक्त, श्रेष्ठ समाज सुधारक और सन्त महापुरुष थे ।उनके रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासा की प्रवृत्ति निहित रहती हैं।कबीर के रहस्यवाद में आध्यात्मिक,प्रेम और पीर,विरह की भावना के साथ साथ सहजता, मौलिकता, सजीवता विद्यमान है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ 87.
2. कबीर का रहस्यवाद डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 32.
3. कबीर ग्रंथावली संपादक–श्यामसुन्दर दास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
4. वही।
5. कबीर का रहस्यवाद डॉ.रामकुमार वर्मा पृष्ठ 35.
6. वही।
7. कबीर ग्रन्थावली श्यामसुन्दर दास नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी।
8. कबीर का रहस्यवाद डॉ. रामकुमार वर्मा पृष्ठ 50.
9. कबीर ग्रन्थावली/श्यामसुन्दर दास नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

10. वही
11. वही
12. वही
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. वही

*****